**ओ३म्**

**‘ईश्वर व जीवात्मा का यथार्थ उपदेश देने से महर्षि दयानन्द विश्वगुरु हैं’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

यह संसार वैज्ञानिकों के लिए आज भी एक अनबुझी पहेली ही है। आज भी वैज्ञानिक इस सृष्टि के स्रष्टा की वास्तविक सत्ता व स्वरुप से अपरिचित हैं। यदि उन्होंने महर्षि दयानन्द सरस्वती की तरह वेदों की शरण ली होती तो वह इस रहस्य को जान सकते थे। आज का संसार दोहरे मापदण्डों वाला संसार है। बिना जाने व समझे वेदों को भी अन्य मतों के धार्मिक ग्रन्थों के समान एक धार्मिक ग्रन्थ मान लिया गया है। इसके पीछे कुछ विदेशियों का अपना स्वार्थ दिखाई देता है जिससे उनके मतों की वास्तविकता समाज के सामने न आ जाये। सच्चाई यह है कि वेद अन्य मत-मतान्तरों की तरह, रूढ़ अर्थ में प्रयोग धर्म, की धार्मिक पुस्तक नहीं है अपितु यह सब सत्य ज्ञान व विद्या की पुस्तक हैं। वेद आज भी अपने मूल स्वरुप में विद्यमान हैं। वेदों की उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ में इस सृष्टि के रचयिता सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी परमेश्वर के द्वारा हुई थी। उन्होंने सृष्टि और मनुष्य के कर्तव्यों आदि का विस्तृत ज्ञान आदि सृष्टि में वेदों के माध्यम से चार ऋषियों की हृदय गुहा में अन्तः प्रेरणा द्वारा दिया था। वेदों का ज्ञान मन्त्रों के रूप में दिया गया है जो कि संस्कृत में है। इन वेद मन्त्रों के अध्ययन से ही संस्कृत भाषा की उत्पत्ति हुई है। पहले सृष्टि की आदि में ईश्वर ने चार ऋषियों को वेदों का ज्ञान दिया। फिर इन ऋषियों ने अन्य लोगों में वेदों का प्रचार किया। वेद ज्ञान दिये जाने से पूर्व किसी भाषा का अस्तित्व नहीं था। यह वेद ज्ञान व वेद मन्त्र ही भाषा के प्रथम आधार व संस्कृत भाषा के मूल स्रोत हैं। सृष्टि के आरम्भ के अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा व ब्रह्मा आदि ऋषि ईश्वर के स्वरूप के साक्षात्कर्ता थे जिन्हें वेदों के सत्य अर्थों का यथार्थ ज्ञान था और उन्होंने इनका प्रचार कर संसार से अज्ञान व सभी भ्रान्तियों को दूर किया। महाभारतकाल तक यह व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रही। महाभारत का युद्ध होने के बाद अध्ययन अध्यापन में बाधा उत्पन्न हुई। वेद मन्त्रों के अर्थ जानने की योग्यता संसार के लोगों में न रही, इस कारण वेदों के अनेक भ्रान्तिपूर्ण व मिथ्या अर्थ प्रचलित हो गये। इसी कारण संसार में अज्ञान का अन्धकार फैला और नाना मत-मतान्तर उत्पन्न हुए। समाज के कुछ प्रबुद्ध लोगों ने अपनी-अपनी बुद्धि व योग्यतानुसार शिक्षा का प्रचार किया। प्रायः उनके अनुयायियों ने उन्हें दिव्य मनुष्य या महापुरूष मानकर प्रचारित किया। यह दावा किया गया कि उन मतों की सभी शिक्षायें सत्य व यथार्थ हैं, जबकि ऐसा नहीं था। सभी मतों में सत्य व असत्य का मिश्रण है जिसका दिग्दर्शन महर्षि दयानन्द सरस्वती (1825-1883) ने अपने ग्रन्थों मुख्यतः सत्यार्थ प्रकाश के अन्तिम 4 अध्यायों में कराया है।

 महर्षि दयानन्द के समय में सभी मत मतान्तरों में ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के स्वरुप को लेकर भ्रम की स्थिति थी। उन्होंने भ्रम निवारण करते हुए ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति, इन तीन सत्ताओं के त्रैतवाद का सिद्धान्त संसार के सम्मुख रखा। ईश्वर सहित तीनों पदार्थों का सत्यस्वरूप सामने रखते हुए उन्होंने इन तीनों सत्ताओं को अनादि व नित्य बताया। उनका मानना था कि ईश्वर, जीवात्मा व मूल-कारण प्रकृति अनुत्पन्न, अनादि व नित्य है। इस कारण यह तीनों सत्तायें अविनाशी व अमर भी हैं अर्थात् इनका नाश अथवा अभाव कभी नहीं होता। उनके समय में ईश्वर के विषय में बहुत सी मिथ्या मान्तयायें प्रचलित थी जो आज भी प्रचलित ने केवल प्रचलित हैं अपितु इनमें वृद्धि हुई है। स्वामीजी ने उन सभी का खण्डन व आलोचना की और ईश्वर के सत्यस्वरूप का उल्लेख करते हुए कहा कि ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टि का कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है। इन लक्षणोवाली सत्ता को ही परमेश्वर मानना और उसी की उपासना करना सबके लिए लाभकारी व श्रेयस्कर है। ईश्वर के इन लक्षणों से अवतारवाद व मूर्तिपूजा सहित इनके विपरीत ईश्वर विषयक सभी मान्यताओं का खण्डन हो जाता है। ईश्वर की उपासना का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ महर्षि पतंजलि का योग दर्शन है। उसका अध्ययन कर ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है। महर्षि दयानन्द ने अपने व्यापक वेद और वैदिक साहित्य के अध्ययन व ज्ञान के आधार पर उपासना की सरलतम विधि वैदिक सन्ध्या लिखी है। इसी के आधार पर आज संसार के करोड़ों लोग उपासना करते हैं। इस सन्ध्या की विधि में योगदर्शन की उपासना पद्धति का निचोड़ वा सार प्रस्तुत किया गया है जिसका अभ्यास करके मनुष्य ईश्वर व अपनी आत्मा दोनों का साक्षात्कार कर सकता है। ईश्वर सहित अन्य सभी विषयों व विद्याओं का अध्ययन करने के लिए मनुष्यों को सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका से अध्ययन का आरम्भ कर उपनिषद, दर्शन, मनुस्मृति व वेदों का अध्ययन करना चाहिये जिससे सभी शंकायें व भ्रान्तियां दूर होती हैं। इसके साथ हि साधना के सरल व प्रभावशाली उपायों का ज्ञान होने से मनुष्य जीवन के उद्देश्य व लक्ष्य, ईश्वर का साक्षात्कार, की प्राप्ति होकर जीवन को सफल बनाया जा सकता है।

 महर्षि दयानन्द जी ने अपने ग्रन्थों में जीवात्मा के सत्य स्वरुप पर भी प्रकाश डाला है। अपने लघु ग्रन्थ **‘स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश’** में **‘जीव’** विषयक अपनी मान्यता लिखते हुए वह बताते हैं कि जीवात्मा इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, ज्ञानादि गुणयुक्त, अल्पज्ञ, नित्य व चेतन सत्ता है। नित्य का अर्थ है कि यह जीव हमेशा से है और हमेशा रहेगा अर्थात् यह अनुत्पन्न और अविनाशी सत्ता है। जीवात्मा को अपने पूर्व जन्मों के कर्मानुसार जीवन व योनि मिलती है जिसमें वह अपने प्रारब्ध के अनुसार फल भोग कर व नये कर्मों को करके मृत्यु को प्राप्त होती है और मृत्यु के पश्चात प्रारब्ध के अनुसार पुनः नया जन्म धारण करती है। जन्म-मरण का यह चक्र अनादि काल से चला आ रहा है और इसी प्रकार सदा चलता रहेगा जब तक कि वेदानुसार सद्कर्मों को करके जीवात्मा की मुक्ति न हो जाये। मनुष्य यदि अच्छे कर्म करता है तो उसकी उन्नति होती है जिससे वह मृत्यु के बाद श्रेष्ठ उन्नत योनि व अवस्थाओं में जन्म ग्रहण करता है और यदि उसके अच्छे कर्म कम व बुरे कर्म अधिक होते हैं तो वह अवनति को प्राप्त होकर निम्न योनियों में जन्म ग्रहण करता है जहां उसे अपने बुरे कर्मों के फलों को भोगना होता है। महर्षि दयानन्द के यह विचार भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं कि जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधम्र्य से भिन्न और व्याप्य-व्यापक और साधम्र्य से अभिन्न हैं। अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है और न होगा, इसी प्रकार परमेश्वर और जीव का व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्र आदि सम्बन्ध है।

 कारण व कार्य प्रकृति जड़ है। कारण प्रकृति अनुत्पन्न तथा त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व, रज व तमोगुण वाली है। यही परमाणु व अणुरूप होकर स्वरूपाकार से बहुत प्रजारूप हो जाती है अर्थात् यह प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर अर्थात् परिवर्तनों को प्राप्त होकर नाना स्वरूप व आकारवाली हो जाती है। पृथिवी, चन्द्र, ग्रह-उपग्रह, सूर्य, नक्षत्र आदि सभी इस त्रिगुणात्मक प्रकृति के विकार वा कार्य हैं। इसको विस्तार से जानने के लिए सांख्य दर्शन सहित वेदों के नासदीय सूक्त आदि का अध्ययन करना चाहिये। यह भी जानने योग्य है कि यह सृष्टि प्रवाह से अनादि है अर्थात् इस प्रकृति से सृष्टि का निर्माण होता है, सृष्टि निर्धारित अवधि तक बनी रहती है, फिर प्रलय होती है और प्रलय में यह पुनः अपने मूल स्वरूप में आ जाती है। प्रलयकाल समाप्त होने पर ईश्वर सृष्टि की रचना कर इसे पुनः उत्पन्न करता है व चलाता है तथा यथासमय प्रलय करता है। इस प्रकार से सृष्टि की उत्पत्ति व प्रलय का क्रम अनादि काल से चला आ रहा है और भविष्य में भी चलता रहेगा।

 महर्षि दयानन्द ने न केवल तीन अनादि पदार्थ ईश्वर, जीव व प्रकृति के सत्य सिद्धान्त **‘त्रैतवाद’** व इनके स्वरूप का ही प्रचार किया अपितु वेदों का पुनरुद्धार भी किया। वेद ही मानव मात्र का सबसे बड़ा धन व पूंजी है। वेद से ही कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध होता है जिसे **‘धर्माधर्म’** कहते हैं। इस धर्माधर्म से ही मनुष्य को बन्ध व मुक्ति होती है। महर्षि दयानन्द के सम्पूर्ण कार्यों को जानने के लिए सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि सहित उनके समस्त ग्रन्थ, उनके जीवन चरितों और पत्रव्यवहार आदि का अध्ययन करना चाहिये। उन्होंने ईश्वर की सच्ची उपासना के साथ अन्य महायज्ञों देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ एवं बलिवैश्वदेवयज्ञ का भी पुनरुद्धार किया। इसका अवलम्बन कर मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। इस संक्षिप्त लेख में हम पाठकों को महर्षि दयानन्द को परा विद्या के क्षेत्र में संसार को ईश्वर, जीव व प्रकृति के सत्य व यथार्थ स्वरूप से परिचित कराने व मनुष्यों को धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष के मार्ग का ज्ञान कराकर मोक्ष तक पहुंचाने के लिए संसार का सबसे बड़ा हितैषी व पुरोधा मानते हैं। महाभारत काल के बाद अन्य कोई महापुरूष ऐसा नहीं हुआ जिसने मनुष्य को संसार विषयक समस्त **‘‘सत्य ज्ञान”** से परिचित कराया हो जैसा महर्षि दयानन्द ने कराया है। महर्षि दयानन्द **‘न भूतो न भविष्यति’** महापुरूष थे। उनके मनुष्य जीवन की इहलौकिक व पारलौकिक उन्नति में योगदान को स्मरण कर संसार के सभी मनुष्यों को लाभ उठाना चाहिये।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**